ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

MANDA'S MULTIFACETED STRUGGLE: IN THE CONTEXT OF THE NOVEL IDANNAMAM
मंदा' का बहुआयामी संघर्षः इदन्नमम उपन्यास के संदर्भ में

Dr. Sanjay Kumar Singh [*1]
[*1] Assistant Professor, Department of Hindi, P.K. Rai Memorial College, Dhanbad, India

सारांश

कथा–साहित्य जगत् में मैत्रेयी पुष्पा का अपनी एक विशिष्ट पहचान है। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आत्मकथा, संस्मरण आदि गद्य विधाओं में आपने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके कथा–साहित्य खासकर उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक का परिवेश जीवंत रूप में समाहित है। पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की दयनीय स्थिति तथा आजादी के बाद आये उनमें परिवर्तन और प्रतिरोधात्मक संघर्षों का चित्रण अधिक रहा है। इन परिस्थितियों को पुष्पा जी ने अपने उपन्यासों में बखूबी उभारा है। 'स्मृति दंश' (1990 ई0) मैत्रेयी जी का पहला उपन्यास है। 'बेतवा बहती रही' (1993 ई0) उपन्यास के माध्यम से आपने उपन्यास साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी और 'इदन्नमम' (1994 ई0) ने आपको साहित्य जगत में एक विशिष्ट पहचान दिलायी। इसके पश्चात 'चाक' (1997 ई0), 'झूला नट' (1999 ई0), 'अल्मा कबूतरी' (2000 ई0), 'अगनपाखी' (2001 ई0), 'विजन' (2002 ई0), 'कहीं ईसुरी फाग' (2004 ई0), 'त्रिया हठ' (2006 ई0), 'गुनाह बेगुनाह' (2011 ई0) एवं 'फरिश्ते निकले' (2014 ई0) उपन्यास प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों में नारी संघर्ष का एक सशक्त रूप दिखायी देता है।

Cite This Article: Dr. Sanjay Kumar Singh. (2019). "MANDA'S MULTIFACETED STRUGGLE: IN THE CONTEXT OF THE NOVEL IDANNAMAM." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(12), 349-356. https://dx.doi.org/10.29121/granthaalayah.v13.i12.2025.6565.

1. प्रस्तावना

कथा–साहित्य जगत् में मैत्रेयी पुष्पा का अपनी एक विशिष्ट पहचान है। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आत्मकथा, संस्मरण आदि गद्य विधाओं में आपने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके कथा–साहित्य खासकर उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक का परिवेश जीवंत रूप में समाहित है। पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की दयनीय स्थिति तथा आजादी के बाद आये उनमें परिवर्तन और प्रतिरोधात्मक संघर्षों का चित्रण अधिक रहा है। इन परिस्थितियों को पुष्पा जी ने अपने उपन्यासों में बखूबी उभारा है। 'स्मृति दंश' (1990 ई0) मैत्रेयी जी का पहला उपन्यास है। 'बेतवा बहती रही' (1993 ई0) उपन्यास

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

के माध्यम से आपने उपन्यास साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी और 'इदन्नमम' (1994 ई0) ने आपको साहित्य जगत में एक विशिष्ट पहचान दिलायी। इसके पश्चात 'चाक' (1997 ई0), 'झूला नट' (1999 ई0), 'अल्मा कबूतरी' (2000 ई0), 'अगनपाखी' (2001 ई0), 'विजन' (2002 ई0), 'कहीं ईसुरी फाग' (2004 ई0), 'त्रिया हठ' (2006 ई0), 'गुनाह बेगुनाह' (2011 ई0) एवं 'फरिश्ते निकले' (2014 ई0) उपन्यास प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों में नारी संघर्ष का एक सशक्त रूप दिखायी देता है।

नारियों के चतुर्दिक शोषण के लिए उनकी आर्थिक पराश्रयता ही मूल रूप से उत्तरदायी है, इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के अधिकार से वंचित रखते हुए उन्हें सात पर्दे के भीतर रखकर सदियों से स्त्रियों पर जितनी वर्जनाएँ और निर्योग्यताएँ पुरुष वर्चस्व वाले समाज में थोपी गई हैं, वे सभी निर्योग्यताएँ आर्थिक स्वावलंबन के साथ तत्क्षण निष्प्रभावी साबित होती हैं। यही कारण है कि मैत्रेयी जी के उपन्यासों की नारी पात्र सबसे पहले आर्थिक स्वावलंबन की लड़ाई लड़ती हैं। 'अगनपाखी' की भुवन, 'झूला नट' की शीलो सबसे पहले आर्थिक मोर्चे पर यह लड़ाई लड़ती हैं और खुद को सक्षम और सबल बनाती हैं। भुवन को यह लड़ाई अपने जेठ के खिलाफ लड़नी पड़ती है तो बऊ को यह लड़ाई उस रतन यादव के खिलाफ लड़नी पड़ती है जिसके साथ उसकी विधवा बेटी प्रेम भागकर विवाह कर लेती है। 'अल्मा कबूतरी' की कदमबाई को अपने कुनबे को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने के लिए शराब तक का धंधा करना पड़ता है। राजनीतिक ताकत हासिल करने के लिए अल्मा लगातार दैहिक शोषण की यंत्रणा सहती है किंतु अंत में सफल होती है। 'इदन्नमम' में भी मंदा के द्वारा आर्थिक एवं राजनीतिक मोर्चे पर जो लड़ाई पुरुष सत्तात्मक समाज से लड़ी गई है उसके माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा जी नारी मुक्ति या स्वतंत्रता का एक सशक्त संदेश देने में सफल रही हैं।

'इदन्नमम' की मुख्य पात्र मंदा भली भाँति जानती है कि लोकतंत्र में अपना अधिकार पाने के लिए अपने जन–प्रतिनिधियों से भी लंबी लड़ाई लड़नी पड़ती है। वह यह भी जानती है कि ये नेता अपने चाटुकार चमचों से घिरे होते हैं और सरकारी फंड का पैसा वहीं खर्च करते हैं जहाँ इनके चमचे भी चार पैसे कमाकर इन्हें भारी संख्या में वोट दिला सकें। उसको यह मालूम हो चुका है कि लोकतंत्र में वोट नागरिकों के पास एक कारगर हथियार है। इसलिए वह गाँव की सभी स्त्रियों को एकत्रित करती है। लोकतंत्र में नारी सशक्तिकरण के पहले पायदन पर मज़बूती से अपने कदम रखती हुई मंदा जब गाँव की सारी स्त्रियों के वोट को एकजुट कर लेती है तो उसके सामाजिक कार्य एक–एक कर पूरे होने लगते हैं। यही नहीं, राजनीति में जब उसे दग़ा मिलता है तो वह चुनाव का बहिष्कार करने से भी पीछे नहीं हटती है। वह ऐसे नेताओं को बेनकाब करती हुई कहती है– ''ये नेता लोग हमें जीवित आदमी नहीं, केवल वोट समझते हैं। हम सोचने समझने का माद्दा रखने वाले इंसान नहीं, इनकी निगाहों में कागज़ पर ठुकी मुहर हैं।''[1] अपने इलाके की

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

उपेक्षा से क्षुब्ध होकर मंदा अपने आसपास के सारे ग्रामीणों को एकत्रित करती है चुनाव बहिष्कार की घोषणा करती है– ''अरे हम तो यह कहती हैं कि हमारे वोट क्या कड़वे लगते हैं जो उनके बदले सुविधा नहीं देते हमें! कड़वे हैं तो अब कड़वे ही रहेंगे। आ जाओ लो मैदान में।''[2] वह अपने ग्राम के लोगों को जागृत करती हुई यह समझाती है कि वोट ही ऐसा हथियार है जिसके बल पर ये अपने जन प्रतिनिधियों से सामाजिक एवं नागरिक हित में काम करवाया जा सकता है।

वस्तुतः मंदा का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वह नारियों के सशक्तिकरण की लड़ाई एक साथ कई स्तर पर लड़ती है। वह जानती है कि स्त्री जाति की समग्र समस्याएँ चाहें वे पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक हों, अंदर से ये सभी एक दूसरे से गहरे रूप से जुड़ी हुई ही नही हैं, बल्कि उलझी हुई भी है। इन समस्याओं की जड़ें इतिहास की भूमि में गहरे रूप से गड़ी हुई हैं, वहीं वर्तमान की विषाक्त हवा भी उन कुपरंपराओं, कुप्रथाओं का पोषण करती हैं। इन समस्याओं को समझना बाहर से प्रायोजित विधायक, सांसद या मंत्रियों के बूते के बाहर की बात हैं इसीलिए कायले के महाराज भी मंदा का लोहा मानते हैं और जन–प्रतिनिधि से कहते हैं– ''मंदा इस गाँव की बेटी है। भूतपूर्व प्रधान महेंद्र सिंह की कन्या। आप नहीं उतरे थे इस क्षेत्र में तब तक, जब वे यहाँ बने अस्पताल के कारण शहीद हो गए। हमें लगता है कि मंदा इस गाँव की ही नहीं, इस क्षेत्र की भूमिसुता है जो इस धरती के रग–रग को पहचानती है।''[3] मंदा सोनपुरा गाँव की स्त्रियों के सशक्तिकरण का ही बीड़ा नहीं उठाती है, अपितु पूरे समाज के उत्थान का संकल्प लेती है। यह बात अलग है कि उसका लक्ष्य स्त्री–सशक्तिकरण ही है। वह नारी के चतुर्दिक शोषण एवं अपनी ही जमीन के अधिकार से वंचित कर दिये गये गाँव वालों की लड़ाई का नेतृत्व करती है। वह रामायण के प्रसंगों और दोहों को गाँव पर आयी विपत्ति से जोड़कर बताती है जिससे गाँव वाले समझ सकें, भले ही किसी आदर्श की स्थापना न कर सकें किन्तु एक आवाज उठाने का प्रयत्न तो करें। "न बांधे सेतु, न ढहावें लंकापुरी, न मारें रावण और मेघनाद, लेकिन इस तरह की इच्छा तो करें। विचारें तो सही। किसी प्रतिरोध की शुरूआत तो करें।....यही क्या कम होगा।''[4] वह अपने संकल्प को पूरा करने के लिए निरन्तर संघर्ष करती है और जनता को अभिलाख सिंह जैसे भ्रष्ट व्यापारी के विरुद्ध जागृत करती है। वह कहती है– "अमीर–गरीब, शत्रु–मित्र सबको शामिल होना होगा इस यज्ञ में। समय पड़े तो समिधा–सामग्री भी बनना होगा। बात होम की है, बात आंदोलन की है।''[5] सोनपुरा में क्रेशर मालिकों के द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ आंदोलन होता है और लोग उसका साथ भी देते हैं। पूरे गाँव का अपना एक ट्रैक्टर खरीद लिया जाता है और उसे पहाड़ों पर चलाया जाता है। इसके लिए उसको अनेक कटुक्तियाँ भी सुननी पड़ती है और अभिलाख सिंह से उसकी हाथापाई तक हो जाती है, लेकिन वह पीछे नहीं हटती है।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

मंदा बहुत पढ़ी–लिखी नहीं है किन्तु क्रैशर पर ट्रैक्टर भेजना, भराई–ढुलाई, खेपों का सब हिसाब–किताब स्वयं रखती है, बाद में अपनी माँ द्वारा दिये गये पैसों से दूसरा ट्रैक्टर भी खरीद लेती है। जगेसर, अभिलाख सिंह जैसे व्यक्ति उसके सामने हमेशा कठिनाई पैदा करते रहते हैं। राउतों और अभिलाख के बीच लड़ाई–झगड़ा होने पर वह स्वयं को अपराधिनी मान बैठती है। उसका संकल्प काँप जाता है और वह कुछ कमजोर पड़ने लगती है। किन्तु उसे महाराज जी के वचनों से सहारा मिलता है और वह स्वयं को ज्यादा ताकत के साथ खड़ा करती है और संघर्ष निरन्तर जारी रखती है। उसका यह संघर्ष उपन्यास के अन्त तक देखा जा सकता है। राजा साहब का चुनाव में वोटों के सहयोग के लिए मंदा की शर्तों को मान लेना, गाँव में मोतीझरा फैलना, चुनावों में राजा साहब का वादों को पूरा न करना और वोटों के लिए गाँव के लोगों को फुसलाना, बरगलाना और अन्त में गाँव की जनता के द्वारा चुनाव का बहिष्कार करना आदि अनेक स्थितियों से वह निरन्तर जूझती रहती है। ये स्थितियाँ केवल एक स्त्री के संघर्ष को ही नहीं बयान करती, बल्कि समकालीन सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था की ओर भी संकेत करती हैं। उपन्यास के अन्त में सुगना, अभिलाख सिंह की हत्या कर देती है और स्वयं को भी जला लेती है, मंदा सुगना को इलाज के लिए शहर ले जाती है, किन्तु सुगना की मृत्यु हो जाती है और वह अकेली रह जाती है। सुगना की मौत उसको चेतनाशून्य बना देती है। उसकी मनःस्थिति को व्यक्त करते हुए लेखिका लिखती हैं– "उसकी कराह भीतर ही भीतर रिसती रही। तेजाबी झरना माँस–मज्जा से फँसी शिराओं को छलनी करता रहा। दीवान, दरोगा, सिपाही और अभिलाख के साथ कई अन्य अनकहे लोग काल्पनिक चौपायों में बदल गये, जो उसके कलेजे को बलात् खुरों से खूँदने में लगे।"[6] मंदा सही अर्थों में स्त्री–संघर्ष की सच्ची प्रतीक है। उसके विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– "महानगरीय मध्यवर्ग की संघर्ष करती और पाँवों के नीचे जमीन की तलाश करती कथा–नारियों के बीच गाँव की मंदा एक अजीब निरीह, निष्कवच, निश्च्छल, संकल्प–दृढ़ नारी का व्यक्तित्व लेकर उभरती है.....रूढ़ियाँ, परंपराओं, अभ्यासों, आकांक्षाओं, ईर्ष्याओं से भरी एक–दूसरे के अधिकार झपटते, कुचलते, चूसते और न्याय की रक्षा करते लोगों की जिंदगी। मंदा को इन्हीं के बीच रहना और रास्ता निकालना है। उसकी लड़ाई दुहरी है, औरत होने की और वंचितों के अधिकारों की...।"[7]

नारी सशक्तिकरण के लिए उसका राजनीतिक स्तर पर जागरुक होना अत्यंत जरूरी है। यह सही है कि सभी नारियाँ नेता नहीं बन सकती हैं। यह जरूरी भी नहीं कि सभी अपने–अपने काम छोड़कर राजनीति में कूद पड़ें, किंतु यह भी सही है कि राजनीति में उनके वर्ग के लिए कोई आवाज़ उठाने वाला हो। लोकतंत्र में नर और नारी दोनों के वोट का मान बराबर है। नारियाँ केवल वोट–बैंक नहीं है। लोकतंत्र में अपने प्रतिनिधियों के काम का लेखा–जोखा लेने का उनको पूरा हक है। यदि जनप्रतिनिधि जनहित में काम नहीं करते हैं, तो उन्हें बदला ही जाना चाहिए। 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी में यह जागरुकता मुखर रूप में दिखाई पड़ती है। गाँव में काम नहीं होने पर वह जन–प्रतिनिधियों से सवाल करती है। ध्यानाकर्षण के लिए

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

वोट के बहिष्कार तक का हथकंडा अपनाती है– ''जिन जन–प्रतिनिधियों को विजयी बनाने के लिए जनता सर्वस्व न्योछावर करती है, वे ही जन–प्रतिनिधि जीतने के बाद न तो कभी क्षेत्र में आते हैं और न ही जन–समस्याओं का समाधान करते हैं। ये लोग सरकार से मिलने वाले धन का मनमाने ढंग से उपयोग करते हैं। मुख्य रूप से उन लोगों की राय के अनुसार धन खर्च करते हैं जो अधिक वोट दिलाने का आश्वासन देते हैं।''[8] उसके द्वारा इस प्रकार की जन–जागरुकता एक नयी भोर की तरह है जिसमें वह स्त्रियों, दलितों और उन समस्त अभिवंचितों को लेकर चल रही है जो अपने नागरिक अधिकारों एवं सामाजिक न्याय के लिए एक लंबे अर्से से तरस रहे हैं।

मंदा का ऐसा विश्वास है कि सामाजिक विकास के लिए सामूहिक प्रयास जरूरी है। उसका मानना है कि बिना किसी सकारात्मक लक्ष्य के किसी प्रकार का कोई संघर्ष निरर्थक ही साबित होगा। उसके पिता की इच्छा थी कि गाँव में बिजली आए, सड़क बनें। वह अपने पिता के अधूरे कार्य– गाँव में सरकारी स्कूल और स्वास्थ्य केंद्र खुलवाने– के लिए गाँव के प्रधान जी से मिलकर लगातार सरकारी अधिकारियों से पत्राचार करती है। वह लगातार सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटती है। इस मुहिम में वह अकेली नही हैं, उसके पीछे गाँव के वैसे सभी बुजुर्ग, युवा, स्त्रियाँ और प्रगतिशील सोच रखने वाले संपन्न लोग भी खड़े हैं जो कि गाँव की तरक्की चाहते हैं। सरकारी विभागों की एक अपनी गति होती है। एक टेबुल से दूसरी टेबुल तक फाइलों को जाने में महीनों लग जाते हैं। मंदा धैर्यपूर्वक अपने उद्देश्य में लगी रहती है और हार नहीं मानती है। दूसरी ओर गाँव वाले हैं जिनकी आतुरता बढ़ती जाती है, समय से काम पूरा नहीं होने पर वे निराश भी हो जाते हैं– ''क्या जाने कब चेतेंगे सरकारी लोग? चेतेंगे भी कि नहीं? बाट जोहते महीनों बीत गए, उम्मीद की लकीर नहीं दिखई दी। कोई आसार नहीं दिख रहे हमारी माँग पूरी होने के।''[9] किंतु जन्म से ही प्रचंड इच्छाशक्ति और जुझारुपन के गुणों से युक्त मंदाकिनी हार नहीं मानती है। धीरे–धीरे उसकी मेहनत रंग लाती है और गाँव में सभी बुनियादी सुविधाएँ धरातल पर साकार होने लगती है।

भारतीय समाज में विभिन्न कालखंडों में नारी की अवस्था भिन्न–भिन्न रूपों में जरूर रही है। संपन्नता के काल में वह जेवरों से लदी गृहस्वामिनी रही है, जिसकी चमक–दमक शादी–विवाह, उत्सव त्यौहार या सार्वजनिक स्थलों पर देखने को मिल जाती थी। युद्ध, बाहरी आक्रमण, गुलामी और आर्थिक जर्जरता के कालों में परिवार के सभी सदस्यों में दुर्दशा भी स्त्रियों को ही सबसे अधिक झेलनी पड़ती थी। समय के उतार–चढ़ाव में नारी के बदलते स्वरूप के साथ एक बात सामान्य थी, वह थी– हर हाल में उसे पुरुषों के ही अधीन ही रहना पड़ा। समाज में जब संपन्नता बढ़ी तो वह पुरुषों के विलास का साधन भी बनी। सामान्य स्त्रियों का पारिवारिक–सामाजिक जीवन कई प्रकार के रूढ़ियों, धार्मिक आडंबरों एवं व्रत–उपवासों में ही उलझा रहा। यह सब कुछ उन्हें अपने 'स्वामी' की लंबी आयु, सुख और समृद्धि के लिए करना पड़ता था।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

''हिंदुओं के महाभारत, मनुस्मृति वगैरह में स्त्रियों के वास्ते पतिव्रता धर्म ही मुख्य रखा है। ईश्वर की पूजा, उपासना, भक्ति सब स्त्रियों को पति की सेवा से ही मिलती है। जो सिद्धि ऋषि लोग बड़ी तपस्या करके पाते हैं, वह इसको (स्त्री को) पति सेवा से ही मिल जाती हैं।''[10] समाज में हजारों सालों से चली आ रही ये परंपराएँ स्त्रियों के मानस में जड़–संस्कार की तरह बसी हुई हैं और कालांतर में भी इनका प्रभाव शहर और गाँव दोनों में बना हुआ है। यह माना जा सकता है कि जहाँ अशिक्षा और आर्थिक परावलंबन है, वहीं ये चीजें अधिक हैं। इन्हें जड़–संस्कार इसलिए भी कहा जाना चाहिए कि जानते हुए भी कि ये परंपराएँ उनके लिए आत्मघाती सिद्ध हो रही हैं, वे उन्हें भय या उससे भी अधिक अंधी निष्ठा वश निभाए जा रही हैं। उदाहरण के लिए श्यामली गाँव के परम–पुरुष जैसी छवि रखने वाले पंचम सिंह हैं, जिनके यहाँ बऊ मंदा के साथ शरण लेती है– वे भी कहीं न कहीं सुंदर स्त्रियों के प्रति अपनी आसक्ति के आवेग पर काबू नहीं प्राप्त कर पाते हैं। विडंबना यह है कि उनकी पत्नी इसे गलत नहीं मान पाती है। किंतु सच्चाई यह भी है कि बऊ के बाद की पीढ़ी चाहे वह प्रेम हो या मंदा हो– वे इन जड़–बंधनों को तोड़ती हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ0 गोपाल राय के शब्दों में– '' 'इदन्नमम' में यह कथा करुणा की सीमा का अतिक्रमण करती हुई 'जुझारू' हो गई है। 'इदन्नमम' की मंदाकिनी वास्तव में एक जुझारू स्त्री है, जो केवल परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती वरन उस समाज के विरुद्ध भी तनकर खड़ी होती है जो आज के नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और अन्य ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरपा जा रहा है।''[11] निश्चित रूप से यह तीसरी पीढ़ी तेज–तर्रार, तर्क–वितर्क करने वाली और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने वाली तो है ही, सामाजिक सशक्तिकरण में नेतृत्व का दायित्व निभाने तक में सक्षम है।

वस्तुतः सदियों से औरतों पर गुलामी का अपना एक इतिहास रहा है। ''जंगलों को काट–काटकर मैदानों में बदलने के लिए ज्यादा कठिन श्रम की आवश्यकता पड़ने पर आदमी ने दूसरों को अपनी ताकत से गुलाम बनाना शुरू किया। व्यक्तिगत संपत्ति की लोभ से पुरुष में स्वामित्व की भावना विकसित हुई। वह जमीन का मालिक था, वह गुलामों का मालिक था, और अब बना स्त्री का भी मालिक। यहीं से औरत की गुलामी की कहानी शुरू होती है।''[12] देहात में कहावत है कि परती पड़ी जमीन और सुंदर विधवा के जिस्म पर सबकी नज़र गड़ी रहती है। 'इदन्नमम' उपन्यास में भी संघर्ष के मूल में जायदाद और उत्तराधिकार का संघर्ष ही है। भोले–भाले महेंदर ने अपनी जमीनें जब प्रेम के नाम करना शुरू किया था उसी समय बऊ ने कहा था– 'जर–और जमीन का साथ नास की निशानी है', किंतु उस समय महेंदर की मति मारी गई थी। प्रेम अपना जीवन अपनी शर्तों पर जीने की लालसा में भले ही आवेग में आकर रतन यादव के साथ भाग खड़ी होती है किंतु बाद में जब उसे यह एहसास होता है कि उसकी रुचि उसके शरीर के साथ–साथ जायदाद पर भी है तो जायदाद और बेटी दोनों पर से अपनी दावेदारी का निर्णय वापस ले लेती है। निश्चित रूप से उसका यह दूरगामी निर्णय मंदा के पक्ष में जाता है और आगे चलकर संघर्ष के बाद ही सही, अपनी

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

जायदाद पर अपना हक कायम कर पाती है। इसे पुरुष जाति की मनमानी और वर्चस्व के खिलाफ जीत के रूप में भी देखा जा सकता है।

एक औरत के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी उसका विधवा हो जाना माना जाता है। निश्चित रूप से जीवनसाथी के छूटने पर उसका शारीरिक या मानसिक रूप से कुछ समय के लिए कमजोर होना या टूट जाना लाज़िमी है, किंतु हमारी सामाजिक व्यवस्था उसे और निरीह और लावारिस बना देती है। बऊ का हर प्रकार से संरक्षण होते हुए भी प्रेम की जो दुर्दशा हुई है, उसका अहसास बऊ के इन शब्दों से लगाया जा सकता है– ''सब हमारे कपाल का खेल है। इसी में ईश्वर ने खींच दी है उल्टी लकीरें।....उनके मन की तो वही जानें। हाँ, इतेक जरूर है कि महेंदर के मरते ही लोग चील–गिद्ध की तरह टूटे हुए थे।''[13] इन पंक्तियों से एक ओर स्त्री जाति के जीवन की लाचारी की झलक मिलती है तो दूसरी ओर पुरुषों की चारित्रिक पाश्विकता का भी परिचय मिलता है।

विधवा स्त्री के साथ–साथ अपने समाज में जो उपेक्षिताएँ होती हैं उनकी स्थिति भी कम त्रासद नहीं होती है। कानूनी भाषा में वे परित्यक्ता भी नहीं होती हैं, किंतु देहात में जिन स्त्रियों के पति उनको नहीं पूछते हैं (कारण अतार्किक या अनर्गल भी हो सकता है) उनका जीवन नर्क से भी बदतर हो जाता है। आलोच्य उपन्यास में इसी प्रकार की एक पात्र कुसुमा भाभी है। कुसुमा पंचम सिंह (दादा) के छोटे भाई के बेटे यशपाल की बहू है। उसकी काया लंबी छरहरी है, नैन–नक्श तीखें हैं फिर भी उसको आज तक इसका उत्तर नहीं मिल पाया है कि वह पति की उपेक्षा का शिकार क्यों बनी हुई है? वह मंदा से पूछती है– ''बिनू हमें एक बात समझाओ, अरथाओं कि ये रिश्ते–नाते सम्बन्ध और मरजाद किसने बनाई? किसने सिरजी है बंधनों की रीत? जो नाम लेती हो उनने? मुनि व्यास ने? रिसियों मुनियों ने? देवताओं ने कि राक्षसों ने?''[14] दुखदायी स्थिति यह है कि इस सवाल का जवाब बच्ची मंदा तो क्या, इस उपन्यास के सबसे जहीन चरित्र पंचम सिंह के पास भी नहीं है। वे भी देवगढ़वारी के सम्मुख निरुत्तर हैं। पूरी पंचायत में सबके लिए न्याय करने वाले दादा अपने घर की बहू के साथ न्याय नहीं कर पा रहे हैं। वे यह उदाहरण भी देते हैं कि 'दीपक तले अंधेरा' वाली स्थिति मौजूद है किंतु वे भी कुछ कर नहीं सकते हैं। इस प्रकार की सामाजिक जड़ता के खिलाफ कुसुमा के शब्द अनुत्तरित सवाल खड़े करते हैं।

- इस प्रकार लेखिका ने 'इदन्नमम' उपन्यास में नारी के पारिवारिक शोषण और उत्पीड़न के लिए उन जड़–बंधनों और जड़–संस्कारों को अधिक दोषी माना है जिनमें सदियों से नारियाँ जकड़ी हुई हैं। एक ओर इस उपन्यास में देवगढ़वारी जैसी यथास्थितिवाद में जीने वाली अधिकांश नारियाँ हैं जिन्होंने इन चीजों को अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया है, तो दूसरी ओर प्रेम और मंदा हैं जो कि पारंपरिक ढाँचे को तोड़ती हुई पारिवारिक उत्पीड़न के खिलाफ आवाज ही नहीं उठाती हैं, उन प्रतिक्रियावादी ताकतों से लोहा लेती हुई उन्हें हर मोर्चे पर परास्त भी करती हैं। इस उपन्यास के सामाजिक संघर्ष का दायरा अत्यंत विस्तृत है, जिसमें मंदा के नेतृत्व में समान मजदूरी के लिए लड़ाई

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.29121/granthaalayah.v7.i12.2019.6565

लड़ी जाती है, स्त्रियों और अभिवंचितों को आर्थिक स्तर पर स्वावलंबी और मज़बूत होने के लिए प्रेरित किया जाता है। सबसे सशक्त पक्ष वोट और नागरिक अधिकारों के प्रति जागरुकता को माना जा सकता है। स्थानीय स्वशासन में नारियों की सक्षम और प्रभावशाली भागीदारी सुनिश्चित हो, इस अभीष्ट को इस उपन्यास के सकारात्मक फल के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. पुष्पा मैत्रेयी, इदन्नमम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0- 385, 232, 305, 193, 197, 366, 7
2. जोशी, डॉ., बिष्ट, हिमांशी, मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श, पृ0- 122, 167
3. राजकिशोर, संपादक, स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0- 14
4. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ0- 387
5. खेतान, डॉ, प्रभा, स्त्री उपेक्षिता (सीमोन द बोउवार), हिंदी रूपांतरण, पृ0- 45
6. पुष्पा मैत्रेयी, इदन्नमम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0- 20, 94